

Chapter छियालिस

उद्धव की वृन्दावन यात्रा

इस अध्याय में यह वर्णन हुआ है कि श्रीकृष्ण ने किस तरह नन्द, यशोदा तथा तरुण गोपियों के दुख को दूर करने के लिए उद्धव को ब्रज भेजा।

एक दिन कृष्ण ने अपने घनिष्ठ मित्र उद्धव से अपना सन्देश ब्रज ले जाने और इस प्रकार उनके वियोग से उत्पन्न उनके माता-पिता तथा गोपियों के दुख को दूर करने के लिए कहा। उद्धव रथ पर चढ़कर सूर्यास्त के समय ब्रज पहुँचे। उन्होंने गौवों को गोकुल लौटते और दूध के अत्यन्त भार के कारण मन्द गति से चल रहीं इन गौवों के आगे-आगे बछड़ों को इधर-उधर उछल-कूद करते देखा। ग्वाले तथा गोपियाँ कृष्ण तथा बलराम की महिमा का गायन कर रहे थे और सारा ग्राम जलती अगुरु

तथा दीपों की पंक्तियों से अच्छी तरह सजाया गया था। इससे अद्वितीय दिव्य सौन्दर्य का दृश्य प्रस्तुत हो रहा था।

नन्द महाराज ने अपने घर में उद्धव का हार्दिक स्वागत किया। फिर गोपनरेश ने भगवान् वासुदेव के ही समान उनकी पूजा की, उन्हें ठीक प्रकार से भोजन कराया, बिस्तर पर सुखपूर्वक बिठाया और तब वसुदेव तथा अपने पुत्र कृष्ण तथा बलराम की कुशल-क्षेम पूछी। नन्द ने पूछा, “क्या कृष्ण अब भी अपने मित्रों की, अपने गोकुल-ग्राम की तथा गोवर्धन पर्वत की याद करते हैं? उन्होंने दावाग्नि, आँधी तथा वर्षा और अन्य अनेक विपदाओं से हमारी रक्षा की थी। हम उनकी लीलाओं का बारम्बार स्मरण करके अपने कर्म-पाश से मुक्त होते हैं और जब हम उनके चरणकमलों से अंकित स्थलों को देखते हैं, तो हमारे मन उनके विचारों में पूरी तरह लीन हो जाते हैं। गर्ग मुनि ने मुझे बतलाया था कि कृष्ण तथा बलराम दोनों ही सीधे वैकुण्ठ से अवतरित हुए हैं। देखो न! किस तरह उन्होंने कंस, मल्लों, कुवल्यापीड (हाथी) तथा अनेक असुरों का सफाया कर दिया है।” ज्यों-ज्यों नन्द को कृष्ण की लीलाएँ याद आती गईं उनका गला अश्रुओं से अवरुद्ध होता गया और वे इसके आगे बोल न सके। माता यशोदा ने अपने पति को ज्योंही कृष्ण के विषय में बोलते सुना, तो अपने पुत्र के उत्कट प्रेम के कारण उनके स्तनों से दूध की धारा बह चली और आँखों से अश्रुओं की झड़ी लग गई।

श्रीकृष्ण के प्रति नन्द तथा यशोदा के अद्वितीय स्नेह को देखकर उद्धव ने कहा, “निस्सन्देह आप दोनों परम धन्य हैं। जिसने परम सत्य के मनुष्य-रूप के प्रति शुद्ध-प्रेम प्राप्त कर लिया हो, उसे फिर आगे कुछ भी प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं रह जाती। कृष्ण तथा बलराम सबों के हृदयों में उसी तरह विद्यमान हैं जिस तरह काठ के भीतर अग्नि सुसुप्त रहती है। ये दोनों, सबों को समभाव से देखते हैं, इनका न कोई विशेष मित्र है न शत्रु। ये अहंकार तथा स्वामित्व से मुक्त हैं, इनका न कोई पिता है, न माता, न पत्नी, न सन्तान। इनका न तो जन्म होता है न ही इनका कोई भौतिक शरीर है। केवल आध्यात्मिक सुख भोगने तथा अपने सन्त-भक्तों का उद्धार करने के लिए वे उच्च या निम्न सभी योनियों में, अपनी इच्छानुसार प्रकट होते हैं।”

“हे नन्द तथा यशोदा! कृष्ण केवल आपके ही पुत्र नहीं हैं अपितु समस्त लोगों के पुत्र हैं और उनके माता-पिता भी हैं। वस्तुतः वे हरएक के प्रियतम सम्बन्धी हैं क्योंकि भूत, वर्तमान तथा भविष्य

में जो कुछ भी देखा या सुना जाता है, वह उनसे स्वतंत्र नहीं है, चाहे वह चर हो या अचर।”

नन्द महाराज तथा उद्धव ने इस तरह कृष्ण के विषय में बातें करते करते रात बिता दी। तत्पश्चात् ग्वालिनो ने प्रातःकालीन पूजा करके दही मथना प्रारम्भ किया और मथने की डोरी को खींचने में व्यस्त रहते रहते बीच में वे कृष्ण की महिमा का गायन करती जा रही थीं। मथने तथा गीत गाने की ध्वनि आकाश में गूँजने लगी, जिससे संसार का सारा अशुभ दूर हो रहा था।

जब सूर्योदय हुआ तो गोपियों ने गाँव के कोने में उद्धव के रथ को देखा। उन्होंने सोचा कि हो न हो अक्रूर वापस आये हैं। किन्तु तभी उद्धव नित्यकर्म से निवृत्त होकर उनके समक्ष उपस्थित हुए।

श्रीशुक उवाच

वृष्णीनां प्रवरो मन्त्री कृष्णास्य दयितः सखा ।

शिष्यो बृहस्पतेः साक्षादुद्धवो बुद्धिसत्तमः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; वृष्णीनाम्—वृष्णियों में से; प्रवरः—श्रेष्ठ; मन्त्री—सलाहकार; कृष्णास्य—कृष्ण का; दयितः—प्रिय; सखा—मित्र; शिष्यः—शिष्य; बृहस्पतेः—देवताओं के गुरु बृहस्पति का; साक्षात्—प्रत्यक्ष; उद्धवः—उद्धव; बुद्धि—बुद्धि वाला; सत्-तमः—सर्वोच्च गुण वाला।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : अत्यन्त बुद्धिमान उद्धव वृष्णि वंश के सर्वश्रेष्ठ सलाहकार, भगवान् कृष्ण के प्रिय मित्र तथा बृहस्पति के प्रत्यक्ष शिष्य थे।

तात्पर्य : आचार्यगण भगवान् कृष्ण द्वारा उद्धव को वृन्दावन भेजे जाने के कई कारण बतलाते हैं। भगवान् ने वृन्दावनवासियों से वादा किया था—*आयास्ये*—मैं लौटूँगा (*भागवत* १०.३९.३५)। यही नहीं, पिछले अध्याय में भगवान् कृष्ण ने नन्द महाराज को वचन दिया था—*द्रष्टुम् एष्यामः*—हम आपका तथा माता यशोदा का दर्शन करने वापस आयेंगे (*भागवत* १०.४५.२३)। साथ ही भगवान्, श्री वसुदेव तथा माता देवकी के साथ कुछ दिन रहने का वचन भी नहीं टाल सकते थे क्योंकि उन्होंने इतने वर्षों तक कष्ट झेले थे। इसलिए भगवान् ने अपने स्थान पर अपने अभिन्न प्रतिनिधि को भेजने का निश्चय किया।

यह प्रश्न किया जा सकता है कि कृष्ण ने नन्द तथा यशोदा को मथुरा आने के लिए क्यों आमंत्रित नहीं किया? श्रील जीव गोस्वामी के अनुसार जिस स्थान पर वे वसुदेव तथा देवकी से प्रेम-विनिमय कर रहे थे उसी स्थान पर और उसी समय नन्द तथा यशोदा के साथ ऐसा करने से भगवान् कृष्ण की

लीलाओं में विषम परिस्थिति उत्पन्न हो जाती। इसीलिए उन्होंने नन्द तथा यशोदा को अपने साथ मथुरा में रहने के लिए नहीं बुलाया। वृन्दावनवासी अपने ही ढंग से कृष्ण को समझते थे अतः मथुरा के राजसी वातावरण में उनकी भावनाओं की समुचित अभिव्यक्ति स्थिर भाव से न हो पाती।

इस श्लोक में श्री उद्धव को बुद्धिसत्तमः “अत्यन्त बुद्धिमान” बतलाया गया है, अतः वे वृन्दावन के उन निवासियों को दक्षता से सान्त्वना दे सकते थे, जो कृष्ण के लिए तीव्र विछोह का अनुभव कर रहे थे। तत्पश्चात् मथुरा लौटकर उद्धव वृन्दावन में देखे गये असाधारण शुद्ध प्रेम का वर्णन सभी वृष्णिवंशियों से कर सकेंगे। निस्सन्देह कृष्ण के प्रति गोपों तथा गोपियों का प्रेम कृष्ण के अन्य भक्तों द्वारा अनुभूत प्रेम से बहुत बढ़ा हुआ था और इस प्रेम के विषय में सुनकर कृष्ण के सारे भक्त अपनी श्रद्धा तथा भक्ति में सम्वर्धन कर सकेंगे।

जैसाकि स्वयं भगवान् ने तृतीय स्कंध में कहा है—*नोद्धवोऽण्वपि मन्यूनः*—उद्धव मुझसे तनिक भी भिन्न नहीं है। कृष्ण से समानता रखने वाले उद्धव कृष्ण का सन्देश वृन्दावन ले जाने के लिए सर्वथा उपयुक्त व्यक्ति थे। वस्तुतः श्री हरिवंश में कहा गया है कि उद्धव वसुदेव के भाई देवभाग के पुत्र थे—*उद्धवो देवभागस्य महाभागः सुतोऽभवत्*। दूसरे शब्दों में, उद्धव कृष्ण के चचेरे भाई थे।

तमाह भगवान्प्रेष्ठं भक्तमेकान्तिनं क्वचित् ।
गृहीत्वा पाणिना पाणिं प्रपन्नार्तिहरो हरिः ॥ २ ॥

शब्दार्थ

तम्—उससे; आह—बोले; भगवान्—भगवान्; प्रेष्ठम्—अपने अत्यन्त प्रिय; भक्तम्—भक्त; एकान्तिनम्—अनन्य; क्वचित्—एक अवसर पर; गृहीत्वा—पकड़कर; पाणिना—हाथ से; पाणिम्—(उद्धव का) हाथ को; प्रपन्न—शरणागत; आर्ति—दुखी; हरः—हरने वाले; हरिः—हरि ने।

भगवान् हरि ने जो अपने शरणागतों के सारे कष्टों को हरने वाले हैं, एक बार अपने भक्त एवं प्रियतम मित्र उद्धव का हाथ अपने हाथ में लेकर उससे इस प्रकार कहा।

गच्छेद्धव व्रजं सौम्य पित्रोर्नौ प्रीतिमावह ।
गोपीनां मद्वियोगाधिं मत्सन्देशैर्विमोचय ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

गच्छ—जाओ; उद्धव—हे उद्धव; व्रजम्—व्रज को; सौम्य—हे भद्र; पित्रोः—माता-पिता तक; नौ—हमारे; प्रीतिम्—तुष्टि; आवह—ले जाओ; गोपीनाम्—गोपियों का; मत्—मुझसे; वियोग—वियोगजनित; आधिम्—मानसिक क्लेश का; मत्—मुझसे लाये गये; सन्देशैः—सन्देशों से; विमोचय—उन्हें छुटकारा दिलाओ।

[भगवान् कृष्ण ने कहा] हे भद्र उद्धव, तुम ब्रज जाओ और हमारे माता-पिता को आनन्द प्रदान करो। यही नहीं, मेरा सन्देश देकर उन गोपियों को भी क्लेश-मुक्त करो जो मेरे वियोग के कारण कष्ट पा रही हैं।

ता मन्मनस्का मत्प्राणा मतर्थे त्यक्तदैहिकाः ।

मामेव दयितं प्रेष्ठमात्मानं मनसा गताः ।

ये त्यक्तलोकधर्माश्च मदर्थे तान्बिभर्म्यहम् ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

ताः—वे (गोपियाँ); मत्—मुझमें लीन; मनस्काः—उनके मन; मत्—मुझमें टिके; प्राणाः—उनके प्राण; मत्-अर्थ—मेरे लिए; त्यक्त—छोड़कर; दैहिकाः—शारीरिक स्तर पर सारी वस्तुएँ; माम्—मुझको; एव—एकमात्र; दयितम्—अपने प्रिय; प्रेष्ठम्—सर्वाधिक प्रिय; आत्मानम्—आत्मा; मनसा गताः—समझ गईं; ये—जो (गोपियाँ या अन्य); त्यक्त—त्यागकर; लोक—यह जगत; धर्माः—धार्मिकता; च—तथा; मत्-अर्थ—मेरे लिए; तान्—उनको; बिभर्मि—भरण-पोषण करता हूँ; अहम्—मैं।

उन गोपियों के मन सदैव मुझमें लीन रहते हैं और उनके प्राण सदैव मुझी में अनुरक्त रहते हैं। उन्होंने मेरे लिए ही अपने शरीर से सम्बन्धित सारी वस्तुओं को त्याग दिया है, यहाँ तक इस जीवन के सामान्य सुख के साथ साथ अगले जीवन में सुख-प्राप्ति के लिए जो धार्मिक कृत्य आवश्यक हैं, उन तक का परित्याग कर दिया है। मैं उनका एकमात्र परम प्रियतम हूँ, यहाँ तक कि उनकी आत्मा हूँ। अतः मैं सभी परिस्थितियों में उनका भरण-पोषण करने का दायित्व अपने ऊपर लेता हूँ।

तात्पर्य : यहाँ पर कृष्ण बतलाते हैं कि वे गोपियों के पास विशेष सन्देश क्यों भेजना चाहते हैं। वैष्णव आचार्यों के अनुसार दैहिकाः शब्द जिसका अर्थ “देह से सम्बन्धित” है, पतियों, बच्चों, घरों इत्यादि का सूचक है। गोपियाँ कृष्ण से इतना प्रगाढ़ प्रेम करती थीं कि वे और कुछ सोच ही नहीं पाती थीं। चूँकि कृष्ण साधनभक्ति में लगे सामान्य भक्तों का भरण-पोषण करते हैं, अतः वे अपनी सर्वश्रेष्ठ भक्त, गोपियों का अवश्य ही भरण-पोषण करेंगे।

मयि ताः प्रेयसां प्रेष्ठे दूरस्थे गोकुलस्त्रियः ।

स्मरन्त्योऽङ्गं विमुह्यन्ति विरहौत्कण्ठ्यविह्वलाः ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

मयि—मुझमें; ताः—वे; प्रेयसाम्—समस्त प्रिय वस्तुओं में से; प्रेष्ठे—सर्वाधिक प्रिय; दूर-स्थे—दूर होने से; गोकुल-स्त्रियः—गोकुल की स्त्रियाँ; स्मरन्त्यः—स्मरण करती हुई; अङ्गं—हे प्रिय (उद्धव); विमुह्यन्ति—स्तम्भित हो जाती हैं; विरह—वियोग की; औत्कण्ठ्य—चिन्ता से; विह्वलाः—विह्वल।

हे उद्धव, गोकुल की उन स्त्रियों के लिए मैं सर्वाधिक स्नेहयोग्य प्रेम-पात्र हूँ। इस तरह जब वे दूर-स्थित मुझको स्मरण करती हैं, तो वे वियोग की उद्विग्नता से विह्वल हो उठती हैं।

तात्पर्य : जो भी वस्तु हमें प्रिय होती है, वह हमारी सम्पत्ति बन जाती है। अन्ततोगत्वा सबसे प्रिय वस्तु हमारी अपनी आत्मा या स्वयं हम हैं। इस तरह आत्मा से अनुकूल सम्बन्ध वाली वस्तुएँ भी हमें प्रिय लगने लगती हैं और हम उन्हें पाना चाहते हैं। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती के अनुसार ऐसी असंख्य प्रिय वस्तुओं में से श्रीकृष्ण सर्वाधिक प्रिय हैं, यहाँ तक कि अपने से भी। गोपियों को इस बात की अनुभूति हो चुकी थी, अतएव वे भगवान् के विछोह से स्तम्भित थीं क्योंकि वे उनसे प्रगाढ़ प्रेम करती थीं। वे अपना प्राण कभी त्याग चुकी होतीं किन्तु भगवान् अपनी दिव्य शक्ति से उन्हें जीवित रखे हुए थे।

धारयन्त्यतिकृच्छ्रेण प्रायः प्राणान्कथञ्चन ।

प्रत्यागमनसन्देशैर्बल्लव्यो मे मदात्मिकाः ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

धारयन्ति—धारण करती हैं; अति-कृच्छ्रेण—बड़ी कठिनाई से; प्रायः—मुखिकल से; प्राणान्—अपने प्राणों को; कथञ्चन—किसी तरह; प्रति-आगमन—वापसी के; सन्देशैः—वादों से; बल्लव्यः—गोपियाँ; मे—मेरी; मत्-आत्मिकाः—मेरे प्रति अनुरक्त।

चूँकि मैंने उनसे वापस आने का वादा किया है इसीलिए मुझमें पूर्णतः अनुरक्त मेरी गोपियाँ किसी तरह से अपने प्राणों को बनाये रखने के लिए संघर्ष कर रही हैं।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती के अनुसार यद्यपि वृन्दावन की गोपियाँ कहने को तो विवाहिता थीं किन्तु उनके पति उनके रूप, रस, गंध, शब्द, स्पर्श जैसे अति आकर्षक गुणों से कोई सम्पर्क नहीं रखते थे। उनके पतियों ने केवल मान रखा था कि “ये हमारी पत्नियाँ हैं।” दूसरे शब्दों में, भगवान् कृष्ण की आध्यात्मिक शक्ति से सारी गोपियाँ उन्हीं के आह्लाद के लिए थीं और कृष्ण उनसे परकीय प्रेम करते थे। वस्तुतः गोपियाँ कृष्ण की आन्तरिक प्रकृति, उनकी परम ह्लादिनी शक्ति की अभिव्यक्तियाँ थीं और आध्यात्मिक स्तर पर वे अपने शुद्ध-प्रेम से भगवान् कृष्ण को आकृष्ट कर रही थीं।

वृन्दावन में कृष्ण के माता-पिता नन्द महाराज तथा यशोदा को भी कृष्ण की सर्वोच्च प्रेम-दशा प्राप्त थी और वे भी कृष्ण की अनुपस्थिति में किसी तरह से जीवित थे। अतः उद्धव इनकी ओर भी विशेष ध्यान देंगे।

श्रीशुक उवाच

इत्युक्त उद्धवो राजन्सन्देशं भर्तुरादृतः ।
आदाय रथमारुह्य प्रययौ नन्दगोकुलम् ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार; उक्तः—कहे गये; उद्धवः—उद्धव; राजन्—हे राजा (परीक्षित); सन्देशम्—सन्देश; भर्तुः—अपने स्वामी का; आदृतः—आदरपूर्वक; आदाय—लेकर; रथम्—अपने रथ पर; आरुह्य—सवार होकर; प्रययौ—चले गये; नन्द-गोकुलम्—नन्द महाराज के ग्राम गोकुल को।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे राजन्, इस तरह कहे जाने पर उद्धव ने आदरपूर्वक अपने स्वामी के सन्देश को स्वीकार किया। वे अपने रथ पर सवार होकर नन्द-गोकुल के लिए चल पड़े।

प्राप्तो नन्दव्रजं श्रीमान्निम्लोचति विभावसौ ।
छन्नयानः प्रविशतां पशूनां खुररेणुभिः ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

प्राप्तः—पहुँचकर; नन्द-व्रजम्—नन्द महाराज की चरागाहों में; श्रीमान्—भाग्यशाली (उद्धव); निम्लोचति—जब अस्त हो रहा था; विभावसौ—सूर्य; छन्न—अदृश्य; यानः—जिसका जाना; प्रविशताम्—प्रवेश करने वाले; पशूनाम्—पशुओं के; खुर—खुर; रेणुभिः—धूल से।

भाग्यशाली उद्धव नन्द महाराज के चरागाहों में उस समय पहुँचे जब सूर्य अस्त होने वाला था और चूँकि लौटती हुई गौवें तथा अन्य पशु अपने खुरों से धूल उड़ा रहे थे अतः उनका रथ अनदेखे ही निकल गया।

वासितार्थेऽभियुध्यद्भिर्नादितं शुश्मिभिवृषैः ।
धावन्तीभिश्च वास्त्राभिरुधोभारैः स्ववत्सकान् ॥ ९ ॥
इतस्ततो विलङ्घ्यद्भिर्गोवत्सैर्मण्डितं सितैः ।
गोदोहशब्दाभिरवं वेणूनां निःस्वनेन च ॥ १० ॥
गायन्तीभिश्च कर्माणि शुभानि बलकृष्णयोः ।
स्वलङ्क ताभिर्गोपीभिर्गोपैश्च सुविराजितम् ॥ ११ ॥
अग्न्यर्कातिथिगोविप्रपितृदेवार्चनान्वितैः ।
धूपदीपैश्च माल्यैश्च गोपावासैर्मनोरमम् ॥ १२ ॥
सर्वतः पुष्पितवनं द्विजालिकुलनादितम् ।
हंसकारण्डवाकीर्णैः पद्मषण्डैश्च मण्डितम् ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

वासित—ऋतुमती (गौवें); अर्थ—के हेतु; अभियुध्यद्भिः—एक-दूसरे से लड़ रहे; नादितम्—नाँदते हुए; शुश्मिभिः—कामुक; वृषैः—साँड़ों से; धावन्तीभिः—दौड़ते हुए; च—तथा; वास्त्राभिः—गौवों समेत; उधः—अपने थनों के; भारैः—भार से; स्व—अपने ही; वत्सकान्—बछड़ों के पीछे; इतः ततः—इधर-उधर; विलङ्घद्भिः—कूदती; गो-वत्सैः—बछड़ों द्वारा; मण्डितम्—अलंकृत; सितैः—श्वेत; गो-दोह—गौवों के दुहने के; शब्द—शब्द से; अभिरवम्—गुञ्जायमान; वेणूनाम्—वंशियों की; निःस्वनेन—उच्च ध्वनि से; च—तथा; गायन्तीभिः—गाती हुई; च—तथा; कर्माणि—कर्मों के विषय में; शुभानि—शुभ; बल-कृष्णयोः—बलराम तथा कृष्ण के; सु—सुन्दर; अलङ्कृताभिः—अलंकृत; गोपीभिः—गोपियों समेत; गोपैः—गोपजन; च—तथा; सु-विराजितम्—सुशोभित; अग्नि—यज्ञ की अग्नि; अर्क—सूर्य; अतिथि—मेहमान; गो—गाय; विप्र—ब्राह्मण; पितृ—पूर्वज; देव—तथा देवतागण की; अर्चन—पूजा से; अन्वितैः—पूरित; धूप—अगुरु; दीपैः—दीपकों से; च—तथा; माल्यैः—फूलों की मालाओं से; च—भी; गोप-आवासैः—ग्वालों के घरों के कारण; मनः-रमम्—अत्यन्त आकर्षक; सर्वतः—चारों ओर; पुष्पित—फूले हुए; वनम्—वन; द्विज—पक्षियों; अलि—तथा भौरों के; कुल—झुंड से; नादितम्—प्रतिध्वनित; हंस—हंस; कारण्डव—विशेष प्रकार की बत्तखों से युक्त; आकीर्णैः—झुंडों से भरा; पद्म-घण्डैः—कमल के कुंजों से; च—तथा; मण्डितम्—सुशोभित।

ऋतुमती गौवों के लिए परस्पर लड़ रहे साँड़ों की ध्वनि से, अपने बछड़ों का पीछा कर रही अपने थनों के भार से रँभाती गौवों से, दुहने की तथा इधर-उधर कूद-फाँद कर रहे श्वेत बछड़ों की आवाज से, वंशी बजाने की ऊँची गूँज से, उन गोपों तथा गोपिनों द्वारा, जो गाँव को अपनी अद्भुत रीति से अलंकृत वेशभूषा से सुशोभित कर रहे थे, कृष्ण तथा बलराम के शुभ कार्यों के गुणगान से गोकुलग्राम सभी दिशाओं में गुंजायमान था। गोकुल में ग्वालों के घर यज्ञ-अग्नि, सूर्य, अचानक आए अतिथियों, गौवों, ब्राह्मणों, पितरों तथा देवताओं की पूजा के लिए प्रचुर सामग्रियों से युक्त होने से अतीव आकर्षक प्रतीत हो रहे थे। सभी दिशाओं में पुष्पित वन फैले थे, जो पक्षियों तथा मधुमक्खियों के झुण्डों से गुंजायमान हो रहे थे और हंस, कारण्डव तथा कमल-कुंजों से भरे-पूरे सरोवरों से सुशोभित थे।

तात्पर्य : यद्यपि गोकुल कृष्ण के विरह से जनित शोक में डूबा था किन्तु भगवान् ने अपनी अन्तरंगा शक्ति का विस्तार कर दिया जिससे व्रज का वह विशेष दृश्य छिप जाय और उद्धव को सूर्यास्त के समय व्रज की सामान्य हलचल तथा हर्ष दिख सके।

तमागतं समागम्य कृष्णास्यानुचरं प्रियम् ।

नन्दः प्रीतः परिष्वज्य वासुदेवधियार्चयत् ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

तम्—उसके (उद्धव के) पास तक; आगतम्—आया हुआ; समागम्य—पहुँचकर; कृष्णास्य—कृष्ण का; अनुचरम्—अनुयायी; प्रियम्—प्रिय; नन्दः—नन्द महाराज; प्रीतः—सुखी; परिष्वज्य—आलिंगन करके; वासुदेव-धिया—वासुदेव के बारे में ध्यान करते हुए; आर्चयत्—पूजा की।

ज्योंही उद्धव नन्द महाराज के घर पहुँचे, नन्द उनसे मिलने के लिए आगे आ गये। गोपों के राजा ने अत्यन्त सुखपूर्वक उनका आलिंगन किया और वासुदेव की ही तरह उनकी पूजा की।

तात्पर्य : उद्धव नन्द के पुत्र कृष्ण के ही समान दिख रहे थे और जिसने भी उन्हें देखा उसे आनन्द प्राप्त हुआ। इस तरह कृष्ण के वियोग-विचारों में डूबे हुए भी नन्द ने जब उद्धव को अपने घर की ओर आते देखा तो वे बाहरी घटनाओं के बारे में सचेत हो गये अतः अपने सम्मान्य अतिथि का आलिंगन करने बाहर निकल आये।

भोजितं परमान्नेन संविष्टं कशिपौ सुखम् ।
गतश्रमं पर्यपृच्छत्यादसंवाहनादिभिः ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

भोजितम्—खिलाया; परम-अन्नेन—उत्तम कोटि के भोजन से; संविष्टम्—बैठाया; कशिपौ—सुन्दर सेज पर; सुखम्—सुखपूर्वक; गत—दूर किया; श्रमम्—थकान; पर्यपृच्छत्—पूछा; पाद—पाँव की; संवाहन—मालिश; आदिभिः—इत्यादि के द्वारा।

जब उद्धव उत्तम भोजन कर चुके और उन्हें सुखपूर्वक बिस्तर पर बिठा दिया गया तथा पाँवों की मालिश तथा अन्य साधनों से उनकी थकान दूर कर दी गई तो नन्द ने उनसे इस प्रकार पूछा।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी उल्लेख करते हैं कि नन्द ने एक नौकर से उद्धव के पाँवों की मालिश कराई क्योंकि उद्धव नन्द के भतीजे थे।

कच्चिदङ्ग महाभाग सखा नः शूरनन्दनः ।
आस्ते कुशल्यपत्याद्यैर्युक्तो मुक्तः सुहृद्व्रतः ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

कच्चित्—क्या; अङ्ग—प्रिय; महा-भग—हे अत्यन्त भाग्यशाली; सखा—मित्र; नः—हमारा; शूर-नन्दनः—शूर का पुत्र (वसुदेव); आस्ते—रहता है; कुशली—कुशलपूर्वक; अपत्य-आद्यैः—अपने बच्चों आदि समेत; युक्तः—मिल कर; मुक्तः—मुक्त; सुहृत्—अपने मित्रों से; व्रतः—अनुरक्त।

[नन्द महाराज ने कहा] : हे परम भाग्यशाली, अब शूर का पुत्र मुक्त हो चुकने और अपने बच्चों तथा अन्य सम्बन्धियों से पुनः मिल जाने के बाद कुशल से है न ?

दिष्ट्या कंसो हतः पापः सानुगः स्वेन पाप्मना ।
साधूनां धर्मशीलानां यदूनां द्वेष्टि यः सदा ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

दिष्ट्या—सौभाग्य से; कंसः—कंस; हतः—मारा जा चुका है; पापः—पापी; स—सहित; अनुगः—अपने अनुयायियों (भाइयों); स्वेन—अपने से; पाप्मना—पापमयता; साधूनाम्—सन्त; धर्म-शीलानाम्—धर्मात्मा; यदूनाम्—यदुओं से; द्वेषि—द्वेष करता है; यः—जो; सदा—सदैव।

सौभाग्यवश, अपने ही पापों के कारण पापात्मा कंस अपने समस्त भाइयों सहित मारा जा चुका है। वह सदैव सन्त तथा धर्मात्मा यदुओं से घृणा करता था।

अपि स्मरति नः कृष्णो मातरं सुहृदः सखीन् ।
गोपान्त्रजं चात्मनाथं गावो वृन्दावनं गिरिम् ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

अपि—शायद; स्मरति—स्मरण करता है; नः—हमको; कृष्णः—कृष्ण; मातरम्—अपनी माता को; सुहृदः—उसके शुभचिन्तक; सखीन्—तथा सारे मित्र; गोपान्—ग्वालों को; ब्रजम्—ब्रज के गाँव; च—तथा; आत्म—स्वयं; नाथम्—स्वामी; गावः—गौवें; वृन्दावनम्—वृन्दावन के जंगल को; गिरिम्—गोवर्धन पर्वत को।

क्या कृष्ण हमारी याद करता है? क्या वह अपनी माता तथा अपने मित्रों एवं शुभचिन्तकों की याद करता है? क्या वह ग्वालों तथा उनके गाँव ब्रज को, जिसका वह स्वामी है, स्मरण करता है? क्या वह गौवों, वृन्दावन के जंगल तथा गोवर्धन पर्वत की याद करता है?

अप्यायास्यति गोविन्दः स्वजनान्सकृदीक्षितुम् ।
तर्हि द्रक्ष्याम तद्वक्त्रं सुनसं सुस्मितेक्षणम् ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

अपि—क्या; आयास्यति—वापस आयेगा; गोविन्दः—कृष्ण; स्व-जनान्—अपने सम्बन्धियों को; सकृत्—एक बार; ईक्षितुम्—देखने के लिए; तर्हि—तब; द्रक्ष्याम—हम देख सकते हैं; तत्—उसका; वक्त्रम्—मुख; सु-नसम्—सुन्दर नाक से युक्त; सु—सुन्दर; स्मित—हँसी; ईक्षणम्—तथा नेत्र।

क्या गोविन्द अपने परिवार को देखने एक बार भी वापस आयेगा? यदि वह कभी आयेगा तो हम उसके सुन्दर नेत्र, नाक तथा मुसकाते सुन्दर मुख को देख सकेंगे।

तात्पर्य : चूँकि अब कृष्ण मथुरा जैसी महानगरी के राजकुमार बन चुके थे अतः नन्द को आशा नहीं रह गई थी कि वे कभी वृन्दावन जैसे सामान्य गोप-ग्राम में वापस आयेंगे। तो भी उन्हें निराशा के होते हुए भी इतनी आशा थी कि वे उन सरल ग्वालजनों को देखने एक बार अवश्य आयेंगे, जिन्होंने बचपन से उन्हें पाल-पोस कर बड़ा किया था।

दावाग्नेर्वातवर्षाच्च वृषसर्पाच्च रक्षिताः ।
दुरत्ययेभ्यो मृत्युभ्यः कृष्णेन सुमहात्मना ॥ २० ॥

शब्दार्थ

दाव-अग्नेः—जंगल की आग से; वात—तेज हवा से; वर्षात्—तथा वर्षा से; च—भी; वृष—बैल से; सर्पात्—सर्प से; च—तथा; रक्षिताः—रक्षा किये गये की; दुरत्ययेभ्यः—दुर्लभ्य; मृत्युभ्यः—मानवीय संकटों से; कृष्णोन्—कृष्ण द्वारा; सु-महा-आत्मना—बहुत बड़े महात्मा ।

उस महान-आत्मा कृष्ण द्वारा हम जंगल की आग, तेज हवा तथा वर्षा, साँड़ तथा सर्प रूपी असुरों जैसे दुर्लभ घातक संकटों से बचा लिये गये थे ।

स्मरतां कृष्णवीर्याणि लीलापाङ्गनिरीक्षितम् ।

हसितं भाषितं चाङ्ग सर्वा नः शिथिलाः क्रियाः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

स्मरताम्—स्मरण करने वाले; कृष्ण-वीर्याणि—कृष्ण के पराक्रमपूर्ण कार्यों को; लीला—क्रीड़ापूर्ण; अपाङ्ग—चितवन से; निरीक्षितम्—उनका देखना; हसितम्—हँसना; भाषितम्—बोलना; च—तथा; अङ्ग—हे प्रिय (उद्धव); सर्वाः—सभी; नः—हमारे लिए; शिथिलाः—शिथिल; क्रियाः—भौतिक कार्यकलाप ।

जब हम कृष्ण द्वारा सम्पन्न किये गये अद्भुत कार्यों, उसकी चपल चितवन, उसकी हँसी तथा उसकी वाणी का स्मरण करते हैं, तो हे उद्धव, हम अपने सारे भौतिक कार्यों को भूल जाते हैं ।

सरिच्छैलवनोद्देशान्मुकुन्दपदभूषितान् ।

आक्रीडानीक्ष्यमाणानां मनो याति तदात्मताम् ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

सरित्—नदियाँ; शैल—पर्वत; वन—जंगल के; उद्देशान्—तथा विभिन्न भाग; मुकुन्द—कृष्ण के; पद—पाँवों से; भूषितान्—सुशोभित; आक्रीडान्—उनके खेल के स्थान; ईक्ष्यमाणानाम्—देखने वालों के लिए; मनः—मन; याति—प्राप्त करता है; तत्-आत्मताम्—उनमें पूर्ण तल्लीनता ।

जब हम उन स्थानों को—यथा नदियों, पर्वतों तथा जंगलों को—देखते हैं, जिन्हें उसने अपने पैरों से सुशोभित किया और जहाँ उसने क्रीड़ाएँ तथा लीलाएँ कीं तो हमारे मन उसमें पूर्णतया लीन हो जाते हैं ।

मन्ये कृष्णां च रामं च प्राप्ताविह सुरोत्तमौ ।

सुराणां महदर्थाय गर्गस्य वचनं यथा ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

मन्ये—मैं सोचता हूँ; कृष्णाम्—कृष्ण को; च—तथा; रामम्—राम को; च—तथा; प्राप्ताविह—प्राप्त कर लिया; इह—इस लोक में; सुर—देवताओं के; उत्तमौ—दो सर्वश्रेष्ठ; सुराणाम्—देवताओं के; महत्—महान्; अर्थाय—हेतु; गर्गस्य—गर्ग मुनि का; वचनम्—कथन; यथा—जैसा ।

मेरे विचार से कृष्ण तथा बलराम अवश्य ही दो श्रेष्ठ देवता हैं, जो इस लोक में देवताओं का

कोई महान् उद्देश्य पूरा करने आये हैं। गर्ग ऋषि ने ऐसी ही भविष्यवाणी की थी।

कंसं नागायुतप्राणं मल्लौ गजपतिं यथा ।
अवधिष्ठां लीलयैव पशूनिव मृगाधिपः ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

कंसम्—कंस को; नाग—हाथियों की; अयुत—दस हजार; प्राणम्—प्राण-शक्ति वाले; मल्लौ—दो पहलवान (चाणूर तथा मुष्टिक); गज-पतिम्—हाथियों के राजा (कुवलयापीड) को; यथा—जिस तरह; अवधिष्ठां—दोनों ने मार डाला; लीलया—खेल-खेल में; एव—केवल; पशून्—पशुओं को; इव—सदृश; मृग-अधिपः—पशुओं का राजा सिंह।

अन्ततः कृष्ण तथा बलराम ने दस हजार हाथियों जितने बलशाली कंस को और साथ ही साथ चाणूर और मुष्टिक पहलवानों एवं कुवलयापीड हाथी को मार डाला। उन्होंने इन सबों को उसी तरह खेल-खेल में आसानी से मार डाला जिस तरह सिंह छोटे पशुओं का सफाया कर देता है।

तात्पर्य : यहाँ पर नन्द यह कहना चाहते हैं कि “न केवल गर्ग मुनि ने यह घोषित किया था कि ये बालक दैवी हैं किन्तु जरा देखो न! उन्होंने क्या कर दिखाया है! सारे लोग इसी की चर्चा चला रहे हैं।”

तालत्रयं महासारं धनुर्यष्टिमिवेभराट् ।
बभञ्जैकेन हस्तेन सप्ताहमदधादिगरिम् ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

ताल-त्रयम्—तीन ताड़ों जितना लम्बा; महा-सारम्—अत्यन्त ठोस; धनुः—धनुष; यष्टिम्—डंडा; इव—सदृश; इभ-राट्—शाही हाथी; बभञ्ज—तोड़ दिया; एकेन—एक; हस्तेन—हाथ से; सप्त-अहम्—सात दिनों तक; अदधात्—पकड़े रहे; गिरिम्—पर्वत को।

जिस आसानी से कोई तेजस्वी हाथी किसी छड़ी को तोड़ देता है उसी तरह से कृष्ण ने तीन ताल जितने लम्बे एवं सुदृढ़ धनुष को तोड़ डाला। वे सात दिनों तक पर्वत को केवल एक हाथ से ऊपर उठाये रहे।

तात्पर्य : आचार्य विश्वनाथ के अनुसार, ताल का वृक्ष लगभग ६० हाथ या ९० फुट की माप के बराबर होता है। इस तरह कृष्ण ने २७० फुट लम्बा धनुष तोड़ डाला।

प्रलम्बो धेनुकोऽरिष्टस्तृणावर्तो बकादयः ।
दैत्याः सुरासुरजितो हता येनेह लीलया ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

प्रलम्बः धेनुकः अरिष्टः—प्रलम्ब, धेनुक तथा अरिष्ट; तृणावर्तः—तृणावर्त; बक-आदयः—बक इत्यादि; दैत्याः—असुर; सुर-असुर—देवता तथा असुर दोनों; जितः—जीता; हताः—मारा; येन—जिसके द्वारा; इह—यहाँ (वृन्दावन में); लीलया—आसानी से।

इसी वृन्दावन में कृष्ण तथा बलराम ने बड़ी ही आसानी से प्रलम्ब, धेनुक, अरिष्ट, तृणावर्त तथा बक जैसे उन असुरों का वध किया जो स्वयं देवताओं तथा अन्य असुरों को पराजित कर चुके थे।

श्रीशुक उवाच

इति संस्मृत्य संस्मृत्य नन्दः कृष्णानुरक्तधीः ।

अत्युत्कण्ठोऽभवत्तूष्णीं प्रेमप्रसरविह्वलः ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार; संस्मृत्य संस्मृत्य—बार बार उत्कट भाव से स्मरण करके; नन्दः—नन्द महाराज; कृष्ण—कृष्ण के प्रति; अनुरक्त—पूर्णतया समर्पित; धीः—मन; अति—अत्यन्त; उत्कण्ठः—उत्सुक; अभवत्—हो गये; तूष्णीम्—मौन; प्रेम—अपने शुद्ध-प्रेम के; प्रसर—वेग से; विह्वलः—अभिभूत।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : इस तरह बारम्बार कृष्ण को उत्कटता से स्मरण करते हुए, भगवान् में पूर्णतया अनुरक्त मन वाले नन्द महाराज को अत्यधिक उद्विग्नता का अनुभव हुआ और वे अपने प्रेम के वेग से अभिभूत होकर मौन हो गये।

यशोदा वर्ण्यमानानि पुत्रस्य चरितानि च ।

शृण्वन्त्यश्रूण्यवास्त्राक्षीत्स्नेहस्नुतपयोधरा ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

यशोदा—माता यशोदा; वर्ण्यमानानि—वर्णन किये जाते हुए; पुत्रस्य—अपने पुत्र के; चरितानि—कार्यकलापों को; च—तथा; शृण्वन्ती—ज्योंही सुना; अश्रूणि—आँसू; अवास्त्राक्षीत्—ढारने लगीं; स्नेह—स्नेह के कारण; स्नुत—गीले; पयोधरा—उनके स्तन।

ज्योंही माता यशोदा ने अपने पुत्र के कार्यकलापों का वर्णन सुना त्योंही उनके आँखों से आँसू बहने लगे और प्रेम के कारण उनके स्तनों से दूध बहने लगा।

तात्पर्य : जिस दिन कृष्ण ने मथुरा के लिए प्रस्थान किया था उस दिन से यद्यपि सैकड़ों नर-नारी यशोदा को सान्त्वना देते और समझाते रहे किन्तु उन्हें अपने पुत्र के मुखड़े के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं दिखता था। वे सबों से अपनी आँखें फेर करके निरन्तर विलाप करती रहती थीं। इस तरह वे उद्धव को न तो पहचान पाईं, न उन्हें वात्सल्य-प्रेम प्रदर्शित कर सकीं, न ही अपने पुत्र के विषय में

उनसे कोई प्रश्न पूछ पाई और न ही अपने पुत्र के लिए कोई संदेश दे पाई। वे केवल कृष्ण-प्रेम में विह्वल थीं।

तयोरित्थं भगवति कृष्णे नन्दयशोदयोः ।
वीक्ष्यानुरागं परमं नन्दमाहोद्धवो मुदा ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

तयोः—उन दोनों का; इत्थम्—इस प्रकार से; भगवति—भगवान् के लिए; कृष्णे—कृष्ण; नन्द-यशोदयोः—नन्द तथा यशोदा का; वीक्ष्य—स्पष्ट देखकर; अनुरागम्—प्रेममय आकर्षण; परमम्—परम; नन्दम्—नन्द से; आह—बोले; उद्धवः—उद्धव; मुदा—हर्षपूर्वक।

तब भगवान् कृष्ण के प्रति नन्द तथा यशोदा के परम अनुराग को स्पष्ट देखकर उद्धव ने हर्षपूर्वक नन्द से कहा।

तात्पर्य : यदि उद्धव ने नन्द तथा यशोदा को कष्ट भोगते देखा होता तो वे हर्ष व्यक्त न करते। किन्तु वास्तव में आध्यात्मिक स्तर पर सारी भावनाएँ दिव्य आनन्द होती हैं। शुद्ध-भक्तों का तथाकथित रोष प्रेम-भाव का दूसरा रूप है। उद्धव ने इसे स्पष्ट देखा था इसीलिए वे इस प्रकार बोले।

श्रीउद्धव उवाच

युवां श्लाघ्यतमौ नूनं देहिनामिह मानद ।
नारायणेऽखिलगुरौ यत्कृता मतिरीदृशी ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

श्री-उद्धवः उवाच—श्री उद्धव ने कहा; युवाम्—तुम दोनों; श्लाघ्यतमौ—सर्वाधिक प्रशंसनीय; नूनम्—निश्चय ही; देहिनाम्—देहधारी जीवों का; इह—इस संसार में; मन-द—हे सम्माननीय; नारायणे—भगवान् नारायण के लिए; अखिल-गुरौ—सबों के गुरु; यत्—क्योंकि; कृता—उत्पन्न; मतिः—मानसिकता; ईदृशी—इस प्रकार की।

श्री उद्धव ने कहा : हे माननीय नन्द, सम्पूर्ण जगत में निश्चय ही आप तथा माता यशोदा सर्वाधिक प्रशंसनीय हैं क्योंकि आपने समस्त जीवों के गुरु भगवान् नारायण के प्रति ऐसा प्रेम-भाव उत्पन्न कर रखा है।

तात्पर्य : नन्द के इस भाव को समझते हुए जो उन्होंने इन शब्दों में अभिव्यक्त किया था कि मन्ये कृष्णं च रामं च प्राप्ताविह सुरोत्तमौ (मैं सोचता हूँ कि कृष्ण तथा राम दो श्रेष्ठ देवता हैं) उद्धव ने यहाँ कृष्ण को भगवान् नारायण कहा है।

एतौ हि विश्वस्य च बीजयोनी

रामो मुकुन्दः पुरुषः प्रधानम् ।
 अन्वीय भूतेषु विलक्षणस्य
 ज्ञानस्य चेशात इमौ पुराणौ ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

एतौ—ये दोनों; हि—निस्सन्देह; विश्वस्य—ब्रह्माण्ड के; च—तथा; बीज—बीज; योनी—तथा गर्भ; रामः—बलराम;
 मुकुन्दः—कृष्ण; पुरुषः—सृजन करने वाले भगवान्; प्रधानम्—उनकी सृजन शक्ति; अन्वीय—प्रवेश करके; भूतेषु—सारे
 जीवों के भीतर; विलक्षणस्य—भ्रमित या अनुभव करते; ज्ञानस्य—ज्ञान का; च—तथा; ईशाते—नियंत्रण करते हैं; इमौ—
 दोनों; पुराणौ—प्राचीन, आदि।

मुकुन्द तथा बलराम—ये दोनों विभु ब्रह्माण्ड के बीज तथा योनि, स्रष्टा तथा उनकी सृजन शक्ति हैं। ये जीवों के हृदयों में प्रवेश करके उनकी बद्ध जागरूकता को नियंत्रित करते हैं। ये आदि परम पुरुष हैं।

तात्पर्य : विलक्षण शब्द का अर्थ या तो “स्पष्ट अनुभव करते” या “दिग्भ्रमित है जो प्रसंग के अनुसार ‘वि’ उपसर्ग को समझकर निकाला जाता है।” प्रबुद्ध जीवों के पक्ष में विलक्षण का अर्थ है “शरीर तथा आत्मा के सही अन्तर की अनुभूति।” इस तरह से जैसाकि ईशाते शब्द से सूचित है भगवान् कृष्ण आध्यात्मिक रूप से प्रगति करने वाले व्यक्ति का मार्गदर्शन करते हैं। विलक्षण का दूसरा अर्थ “दिग्भ्रमित” या “मोहग्रस्त” है, जो उन पर स्पष्ट रूप से लागू होता है जिन्होंने आत्मा तथा शरीर के अन्तर को या जीवात्मा तथा परमात्मा के अन्तर को ठीक से नहीं समझा है। ऐसे मोहग्रस्त जीव भगवान् के धाम को—नित्य वैकुण्ठ लोक को—नहीं जाते अपितु प्रकृति के नियमानुसार क्षणिक गन्तव्य प्राप्त करते हैं।

वैष्णव साहित्य से ज्ञात होता है कि श्रीराम बलराम हैं, जो कृष्ण के स्वांश होने से उनके संग रहते हैं और उनसे सर्वथा अभिन्न हैं। भगवान् एक हैं फिर भी वे अपना विस्तार करते हैं और इस तरह बलराम एकेश्वरवाद से समझौता नहीं करते।

यस्मिन्जनः प्राणवियोगकाले
 क्षणं समावेश्य मनोऽविशुद्धम् ।
 निर्हृत्य कर्माशयमाशु याति
 परां गतिं ब्रह्ममयोऽर्कवर्णः ॥ ३२ ॥
 तस्मिन्भवन्तावखिलात्महेतौ
 नारायणे कारणमर्त्यमूर्तौ ।
 भावं विधत्तां नितरां महात्मन्

किं वावशिष्टं युवयोः सुकृत्यम् ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

यस्मिन्—जिसमें; जनः—कोई व्यक्ति; प्राण—अपने प्राण से; वियोग—विरह के; काले—समय पर; क्षणम्—क्षण-भर के लिए; समावेश्य—लीन करके; मनः—अपना मन; अविशुद्धम्—अशुद्ध; निर्हृत्य—समूल नष्ट करके; कर्म—कर्मों के फलों का; आशयम्—सारे चिह्न; आशु—तुरन्त; याति—जाता है; पराम्—परम; गतिम्—गन्तव्य को; ब्रह्म-मयः—शुद्ध आध्यात्मिक स्वरूप में; अर्क—सूर्य की तरह; वर्णः—रंग; तस्मिन्—उसमें; भवन्तौ—आप दोनों; अखिल—समस्त; आत्म—परमात्मा; हेतौ—तथा कारण; नारायणे—भगवान् नारायण में; कारण—हर वस्तु का कारण; मर्त्य—मनुष्य के; मूर्ती—रूप में; भावम्—शुद्ध-प्रेम; विधत्ताम्—दिया है; नितराम्—अत्यधिक; महा-आत्मन्—पूर्ण को; किम् वा—तो क्या; अवशिष्टम्—शेष; युवयोः—तुम दोनों के लिए; सु-कृत्यम्—आवश्यक शुभ कर्म।

कोई भी व्यक्ति, चाहे वह अशुद्ध अवस्था में ही क्यों न हो, यदि मृत्यु के समय क्षण-भर के लिए भी अपने मन को उन (भगवान्) में लीन कर देता है, तो उसके सारे पापमय कर्मों के फल भस्म हो जाते हैं जिससे उनका नाम-निशान भी नहीं रह जाता और वह सूर्य के समान तेजस्वी शुद्ध आध्यात्मिक स्वरूप में परम दिव्य गन्तव्य को प्राप्त करता है। आप दोनों ने उन मनुष्य-रूप भगवान् नारायण की अद्वितीय प्रेमाभक्ति की है, जो सबों के परमात्मा हैं और सारे प्राणियों के कारण-स्वरूप हैं और जो सबों के मूल कारण हैं। भला अब भी आपको कौन-से शुभ कर्म करने की आवश्यकता है?

आगमिष्यत्यदीर्घेण कालेन व्रजमच्युतः ।

प्रियं विधास्यते पित्रोर्भगवान्सात्वतां पतिः ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

आगमिष्यति—वापस आयेगा; अदीर्घेण—अल्प; कालेन—समय में; व्रजम्—व्रज में; अच्युतः—अच्युत कृष्ण; प्रियम्—तुष्टि; विधास्यते—देगा; पित्रोः—अपने माता-पिता को; भगवान्—भगवान्; सात्वताम्—भक्तों का; पतिः—स्वामी तथा रक्षक।

भक्तों के स्वामी अच्युत कृष्ण शीघ्र ही अपने माता-पिता को तुष्टि प्रदान करने के लिए व्रज लौटेंगे।

तात्पर्य : अब यहाँ से उद्धव कृष्ण का सन्देश सुनाते हैं।

हत्वा कंसं रङ्गमध्ये प्रतीपं सर्वसात्वताम् ।

यदाह वः समागत्य कृष्णः सत्यं करोति तत् ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

हत्वा—मारकर; कंसम्—कंस को; रङ्ग—रंगभूमि के; मध्ये—बीच में; प्रतीपम्—शत्रु; सर्व—सात्वताम्—समस्त यदुओं का; यत्—जो; आह—कहा; वः—तुमसे; समागत्य—वापस आकर; कृष्णः—कृष्ण ने; सत्यम्—सत्य; करोति—करेगा; तत्—वही।

रंगभूमि में समस्त यदुओं के शत्रु कंस का वध कर चुकने के बाद अब कृष्ण वापस आकर

आपको दिये गये वचन को अवश्य ही पूरा करेंगे।

मा खिद्यतं महाभागौ द्रक्ष्यथः कृष्णामन्तिके ।
अन्तर्हृदि स भूतानामास्ते ज्योतिरिवैधसि ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

मा खिद्यतम्—आप शोक न करें; महा-भागौ—हे दोनों भाग्यशाली जन; द्रक्ष्यथः—देखेंगे; कृष्णाम्—कृष्ण को; अन्तिके—निकट भविष्य में; अन्तः—भीतर; हृदि—हृदयों में; सः—वह; भूतानाम्—सारे जीवों के; आस्ते—उपस्थित है; ज्योतिः—अग्नि; इव—सदृश; एधसि—काठ के भीतर।

हे भाग्यशालीजनों, आप शोक मत करें। आप शीघ्र ही कृष्ण को देख सकेंगे। वे समस्त जीवों के हृदयों में उसी तरह विद्यमान हैं जिस तरह काष्ठ में अग्नि सुप्त रहती है।

तात्पर्य : उद्धव समझ गये थे कि नन्द तथा यशोदा कृष्ण को देखने के लिए अधीर थे, अतः उन्होंने उन्हें विश्वास दिलाया कि कृष्ण शीघ्र ही आयेंगे।

न ह्यस्यास्ति प्रियः कश्चिन्नाप्रियो वास्त्यमानिनः ।
नोत्तमो नाधमो वापि समानस्यासमोऽपि वा ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; हि—निस्सन्देह; अस्य—उसके लिए; अस्ति—है; प्रियः—प्रिय; कश्चित्—कोई; न—नहीं; अप्रियः—अप्रिय; वा—अथवा; अस्ति—है; अमानिनः—सम्मान पाने की इच्छा से रहित; न—नहीं; उत्तमः—श्रेष्ठ; न—नहीं; अधमः—निम्न; वा—अथवा; अपि—भी; समानस्य—अन्यों का आदर करने वाले के लिए; आसमः—नितान्त सामान्य; अपि—भी; वा—अथवा।

उनके लिए कोई न तो विशेष प्रिय है, न अप्रिय; न तो श्रेष्ठ है न निम्न है; फिर भी वे किसी से अन्यमनस्क नहीं हैं। वे सम्मान पाने की सारी इच्छा से रहित हैं फिर भी वे सबों का सम्मान करते हैं।

न माता न पिता तस्य न भार्या न सुतादयः ।
नात्मीयो न परश्चापि न देहो जन्म एव च ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं है; माता—माता; न—न तो; पिता—पिता; तस्य—उनका; न—नहीं; भार्या—पत्नी; न—न तो; सुत-आदयः—पुत्र इत्यादि; न—न कोई; आत्मीयः—अपने से सम्बद्ध; न—न तो; परः—बाहरी, पराया; च अपि—भी; न—नहीं; देहः—शरीर; जन्म—जन्म; एव—या तो; च—तथा।

न तो उनके माता है, न पिता, न पत्नी, न पुत्र या अन्य कोई सम्बन्धी। उनसे किसी का सम्बन्ध नहीं है फिर भी उनका कोई पराया नहीं है। न तो उनका भौतिक शरीर है, न कोई जन्म।

न चास्य कर्म वा लोके सदसन्मिश्रयोनिषु ।
क्रीडार्थं सोऽपि साधूनां परित्राणाय कल्पते ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं है; च—तथा; अस्य—इसका; कर्म—कर्म; वा—अथवा; लोके—इस जगत में; सत्—शुद्ध; असत्—अशुद्ध; मिश्र—या मिश्रित; योनिषु—योनियों में; क्रीडा—खिलवाड़ के; अर्थम्—लिए; सः—वह; अपि—भी; साधूनाम्—अपने साधु-भक्तों की; परित्राणाय—रक्षा करने के लिए; कल्पते—प्रकट होता है।

उन्हें इस जगत में ऐसा कोई कर्म करना शेष नहीं जो उन्हें शुद्ध, अशुद्ध या मिश्रित योनियों में जन्म लेने के लिए बाध्य कर सके। फिर भी अपनी लीलाओं का आनन्द लेने और अपने साधु-भक्तों का उद्धार करने के लिए वे स्वयं प्रकट होते हैं।

सत्त्वं रजस्तम इति भजते निर्गुणो गुणान् ।
क्रीडन्नतीतोऽपि गुणैः सृजत्यवहन्त्यजः ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

सत्त्वम्—सतो गुण; रजः—रजो गुण; तमः—तथा तमो गुण; इति—इस प्रकार कहे जाने वाले; भजते—स्वीकार करता है; निर्गुणः—भौतिक गुणों से परे; गुणान्—गुणों को; क्रीडन्—क्रीड़ा करते हुए; अतीतः—परे; अपि—यद्यपि; गुणैः—गुणों के द्वारा; सृजति—सृजन करता है; अवति—पालन-पोषण करता है; हन्ति—तथा संहार करता है; अजः—अजन्मा भगवान्।

यद्यपि दिव्य भगवान् भौतिक प्रकृति के तीन गुणों—सतो, रजो तथा तमो गुणों—से परे हैं फिर भी क्रीड़ा के रूप में वे इनकी संगति स्वीकार करते हैं। इस तरह अजन्मा भगवान् इन भौतिक गुणों का उपयोग सृजन, पालन तथा संहार के लिए करते हैं।

तात्पर्य : जैसाकि ब्रह्मसूत्र (२.१.३४) में कहा गया है—लोकवत् लीलाकैवल्यम्—भगवान् अपनी आध्यात्मिक लीलाएँ इस तरह करते हैं मानो वे इस जगत के वासी हों।

यद्यपि भगवान् न किसी का पक्ष लेते हैं न ही किसी के साथ दुर्व्यवहार करते हैं, तो भी इस जगत में हमें सुख तथा दुख दिख जाते हैं। गीता (१३.२२) में कहा गया है—कारणं गुणसंगोऽस्य—हम प्रकृति के विभिन्न गुणों के साथ संगति चाहते हैं अतः हमें परिणामों को स्वीकार करना ही पड़ता है। भगवान् हमें प्रकृति रूपी क्षेत्र प्रदान करते हैं जिसमें हम पूरी स्वच्छन्दता बरत सकते हैं। मूर्ख अभक्तजन भगवान् की प्रकृति का दुरुपयोग करते हुए भगवान् को ठगने की कोशिश करते हैं किन्तु जब उन्हें कर्म-फल भोगना पड़ता है, तो वे अपने दुष्कर्मों के लिए भगवान् को कोसते हैं। जो लोग ईश्वर से ईर्ष्या करते हैं उनकी ऐसी लज्जाजनक स्थिति होती है।

यथा भ्रमरिकादृष्ट्या भ्राम्यतीव महीयते ।

चित्ते कर्तरि तत्रात्मा कर्तेवाहंधिया स्मृतः ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

यथा—जिस तरह; भ्रमरिका—घुमरी के कारण; दृष्ट्या—किसी की दृष्टि में; भ्राम्यति—घूमते हुए; इव—मानो; मही—पृथ्वी; ईयते—प्रकट होता है; चित्ते—मन में; कर्तरि—कर्ता होने से; तत्र—वहाँ; आत्मा—आत्मा; कर्ता—कर्ता; इव—सदृश; अहम्-धिया—मिथ्या अहंकार से; स्मृतः—सोचा जाता है ।

जिस तरह चक्री में घूमने वाला व्यक्ति धरती को घूमता देखता है उसी तरह जो व्यक्ति मिथ्या अहंकार के वशीभूत होता है, वह अपने को कर्ता मानता है, जबकि वास्तव में उसका मन कार्य करता होता है ।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने एक समानान्तर विचार प्रस्तुत किया है—यद्यपि हमारे सुख-दुख प्रकृति के साथ हमारी क्रिया-प्रतिक्रिया के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं किन्तु हम भगवान् को ही उनका कारण मानते हैं ।

युवयोरेव नैवायमात्मजो भगवान्हरिः ।

सर्वेषामात्मजो ह्यात्मा पिता माता स ईश्वरः ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

युवयोः—तुम दोनों का; एव—अकेले; न—नहीं; एव—निस्सन्देह; अयम्—यह; आत्म-जः—पुत्र; भगवान्—भगवान्; हरिः—कृष्ण; सर्वेषाम्—सबों का; आत्म-जः—पुत्र; हि—निस्सन्देह; आत्मा—आत्मा; पिता—पिता; माता—माता; सः—वह; ईश्वरः—नियन्ता ।

निश्चय ही भगवान् हरि एकमात्र आपके पुत्र नहीं हैं, प्रत्युत भगवान् होने के कारण वे हर एक के पुत्र, आत्मा, पिता तथा माता हैं ।

दृष्टं श्रुतं भूतभवद्भविष्यत्

स्थास्नुश्चरिष्णुर्महदल्पकं च ।

विनाच्युताद्वस्तु तरां न वाच्यं

स एव सर्वं परमात्मभूतः ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

दृष्टम्—देखा हुआ; श्रुतम्—सुना हुआ; भूत—भूतकाल; भवत्—वर्तमान्; भविष्यत्—भविष्य; स्थास्नुः—अचल; चरिष्णुः—चल; महत्—विशाल; अल्पकम्—क्षुद्र; च—तथा; विना—के बिना; अच्युतात्—अच्युत कृष्ण से; वस्तु—वस्तु; तराम्—तनिक भी; न—नहीं है; वाच्यम्—नाम लेने के योग्य; सः—वह; एव—अकेले; सर्वम्—हर वस्तु; परम-आत्म—परमात्मा रूप में; भूतः—प्रकट ।

भगवान् अच्युत से किसी भी वस्तु का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है—चाहे वह भूत से या वर्तमान से अथवा भविष्य से सम्बन्धित हो, वह देखी हो या सुनी हो, चर हो या अचर हो, विशाल हो या

क्षुद्र। दरअसल वे ही सर्वस्व हैं क्योंकि वे परमात्मा हैं।

तात्पर्य : श्री उद्धव नन्द तथा यशोदा को उच्चतर दार्शनिक धरातल पर लाकर उनके दुख को दूर कर रहे हैं। वे बता रहे हैं कि क्योंकि कृष्ण सर्वस्व हैं और हर एक के भीतर उपस्थित हैं अतः उनके शुद्ध-भक्त सदैव उनके साथ रहते हैं।

एवं निशा सा ब्रुवतोर्व्यतीता
नन्दस्य कृष्णानुचरस्य राजन् ।
गोप्यः समुत्थाय निरूप्य दीपान्
वास्तून्समभ्यर्च्य दौधीन्यमन्थुन् ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस तरह से; निशा—रात; सा—वह; ब्रुवतोः—दोनों के बातचीत करते; व्यतीता—बीत गई; नन्दस्य—नन्द महाराज का; कृष्ण-अनुचरस्य—तथा कृष्ण का दास (उद्धव); राजन्—हे राजा (परीक्षित); गोप्यः—गोपियाँ; समुत्थाय—नींद से उठ कर; निरूप्य—जलाकर; दीपान्—दीपकों को; वास्तून्—घरेलू अर्चाविग्रहों को; समभ्यर्च्य—पूजा करके; दधीनि—दही; अमन्थुन्—मथने लगीं।

हे राजन् जब कृष्ण के दूत उद्धव नन्द महाराज से बातें करे जा रहे थे तो रात बीत गई। गोकुल की स्त्रियाँ तब नींद से जग गई और उन्होंने दीपक जलाकर अपने अपने घरों के अर्चाविग्रहों की पूजा की। इसके बाद वे दही मथने लगीं।

ता दीपदीपैर्मणिभिर्विरेजु
रजूर्विकर्षद्भुजकङ्कणस्त्रजः ।
चलन्नितम्बस्तनहारकुण्डल-
त्विषत्कपोलारुणकुङ्कुमाननाः ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

ताः—वे स्त्रियाँ; दीप—दीपकों द्वारा; दीपैः—दीपित; मणिभिः—मणियों से; विरेजुः—चमक रही थीं; रजूः—रस्सियाँ; विकर्षत्—खींचते हुए; भुज—अपनी भुजाओं में; कङ्कण—चूड़ियों की; स्त्रजः—पंक्तियाँ; चलन्—हिलाती; नितम्ब—कटि के नीचे का भाग; स्तन—वक्षस्थल; हार—तथा गले की दुलरी; कुण्डल—कान की बालियों के कारण; त्विषत्—चमचमाते; कपोल—गाल; अरुण—लाल; कुङ्कुम—कुंकुम चूर्ण से; आननाः—उनके मुखमंडल।

जब व्रज की स्त्रियाँ कंगन पहने हुए हाथों से मथानी की रस्सियाँ खींच रही थीं तो वे दीपक के प्रकाश से प्रतिबिम्बित मणियों की चमक से दीपित हो रही थीं। उनके नितम्ब, स्तन तथा गले के हार हिल-डुल रहे थे और लाल कुंकुम से पुते उनके मुखमण्डल, गालों पर पड़ी कान की बालियों की चमक से चमचमा रहे थे।

उद्गायतीनामरविन्दलोचनं

ब्रजाङ्गनानां दिवमस्पृशदध्वनिः ।

दध्नश्च निर्मन्थनशब्दमिश्रितो

निरस्यते येन दिशाममङ्गलम् ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

उद्गायतीनाम्—जोर से गाती हुई; अरविन्द—कमलों की तरह; लोचनम्—नेत्र; ब्रज-अङ्गनानाम्—ब्रज की स्त्रियों के; दिवम्—आकाश; अस्पृशत्—स्पर्श किया; ध्वनिः—ध्वनि, गूँज; दध्नः—दही का; च—तथा; निर्मन्थन—मथने का; शब्द—शब्द से; मिश्रितः—मिश्रित; निरस्यते—दूर हो जाती है; येन—जिससे; दिशाम्—सभी दिशाओं का; अमङ्गलम्—अमंगल।

जब ब्रज की स्त्रियाँ कमल-नेत्र कृष्ण की महिमा का गायन जोर-जोर से करने लगीं तो उनके गीत उनके मथने की ध्वनि से मिल कर आकाश तक उठ गये और उन्होंने सारी दिशाओं के अमंगल को दूर कर दिया।

तात्पर्य : गोपियाँ कृष्ण के विचार में लीन थीं अतः वे उनकी उपस्थिति का अनुभव कर रही थीं। इसीलिए वे हर्षित होकर गा सकीं।

भगवत्युदिते सूर्ये नन्दद्वारि ब्रजौकसः ।

दृष्ट्वा रथं शातकौम्भं कस्यायमिति चाब्रुवन् ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ

भगवति—देव; उदिते—उदय होने पर; सूर्ये—सूर्य के; नन्द-द्वारि—नन्द महाराज के दरवाजे; ब्रज-ओकसः—ब्रज के निवासी; दृष्ट्वा—देखकर; रथम्—रथ को; शातकौम्भम्—स्वर्ण से बने; कस्य—किसका; अयम्—यह; इति—इस प्रकार; च—तथा; अब्रुवन्—वे बोले।

जब सूर्यदेव उदित हो चुके तो ब्रजवासियों ने नन्द महाराज के दरवाजे के सामने एक सुनहरा रथ देखा। (अतः) उन्होंने पूछा, “यह किसका रथ है?”

अक्रूर आगतः किं वा यः कंसस्यार्थसाधकः ।

येन नीतो मधुपुरीं कृष्णः कमललोचनः ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ

अक्रूरः—अक्रूर; आगतः—आया है; किम् वा—शायद; यः—जो; कंसस्य—कंस के; अर्थ—कार्य के लिए; साधकः—सम्पन्न करने वाला; येन—जिससे; नीतः—लाया गया; मधु-पुरीम्—मथुरा नगरी में; कृष्णः—कृष्ण; कमल—कमल सदृश; लोचनः—आँखों वाले।

“शायद अक्रूर लौट आया है—वही जिसने कमल-नेत्र कृष्ण को मथुरा ले जाकर कंस की इच्छा पूरी की थी।

तात्पर्य : गोपियाँ क्रुद्ध होकर यह कह रही थीं।

किं साधयिष्यत्यस्माभिर्भर्तुः प्रीतस्य निष्कृतिम् ।

ततः स्त्रीणां वदन्तीनामुद्धवोऽगात्कृताह्निकः ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ

किम्—क्या; साधयिष्यति—सम्पन्न करेगा; अस्माभिः—हमसे; भर्तुः—स्वामी का; प्रीतस्य—तुष्ट रहने वाले का; निष्कृतिम्—पिण्डदान; ततः—तत्पश्चात्; स्त्रीणाम्—स्त्रियाँ; वदन्तीनाम्—बोलती हुई; उद्धवः—उद्धव; अगात्—वहाँ आया; कृत—करके; अह्निकः—प्रातःकालीन धार्मिक कृत्य ।

जब स्त्रियाँ इस तरह बोल ही रही थीं कि, “क्या वह अपनी सेवाओं से प्रसन्न हुए अपने स्वामी के पिण्डदान के लिए हमारे मांस को अर्पित करने जा रहा है?” तभी प्रातःकालीन कृत्यों से निवृत्त हुए उद्धव दिखलाई पड़े ।

तात्पर्य : इस श्लोक में अक्रूर द्वारा कृष्ण को ले जाये जाने से उत्पन्न गोपियों की घोर निराशा प्रकट होती है । किन्तु उन्हें आश्चर्य होगा जब वे देखेंगी कि यह अनपेक्षित अतिथि उद्धव है ।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कन्ध के अन्तर्गत “उद्धव की वृन्दावन यात्रा” नामक छियालिसवें अध्याय के श्रील प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए ।